सत्यार्थप्रकाश: एक मूल्यांकन

डॉ. सत्यव्रत राजेश

: प्रकाशक :

चान्दरतन दमानी

ट्रस्टी, आर्य ट्रस्ट, बडा बाजार,

कोलकाता-७००००७

ओ३म्

आधुनिककाल में हुए माँ-मानवता के महानतम हितचिन्तक पूर्ववर्ती ऋषि मुनियों के सर्वांगीण ज्ञान के प्रस्तोता (प्रथम संदेशवाहक) महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज विरचित अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश एक अन्यतम दिशादायी विश्वधर्म कोश (Encyclopedia of World's Religious Faiths) है। उसे अवश्य पढ़ें – भ्रांतियाँ हटेंगी, संशय मिटेंगे, जीवनोत्थान की दिशा मिलेगी। अन्य बातों के साथ इस पुस्तिका में पढ़ें –

सत्यार्थप्रकाश - एक मूल्यांकन

लेखक

डॉ० सत्यव्रत 'राजेश'

एम०ए०, पी-एच० डी०, डी०ए० लिट्०,

सिद्धान्तशिरोमणि, विद्यावाचस्पति, शास्त्री

प्रकाशक

चान्दरतन दमानी

ट्रस्टी, आर्यट्रस्ट बड़ाबाजार

१, मुंशी सदरुद्दीन लेन, कोलकाता-७०० ००७

दूरभाष : (०३३) २२६९-६२४९, ०९३३१० ४५३२२

प्रकाशकीय वक्तव्य

आधुनिककाल में विश्वमानवता के महानतम हितचिन्तक उच्चतम दार्शनिक, क्रन्ति के दूरदर्शी संदेशवाहक, सत्य के परम आग्रही, अन्यतम योगी, युग-प्रवर्तक **महर्षि दयानन्द सरस्वती** द्वारा अब से १३३ वर्ष पूर्व विक्रम सवत् १९३१-३२ में विरचित **सत्यार्थप्रकाश** समग्र क्रान्ति का उत्प्रेरक ऐसा अनुपम ग्रन्थ है जिसके प्रकाश में संसार भर के अनगिनत मानवों ने यही नहीं विविध मत-पन्थ-सम्प्रदायों वा मजहबों ने अपनी अपनी चिन्तनधाराओं को अग्रसर करने की दिशा में मार्गदर्शन पाया है। ज्ञान के अदभुत विश्वकोश 'सत्यार्थ प्रकाश' के अनेक प्रकाशकों द्वारा संसार की विभिन्न भाषाओं में कई संस्करण प्रकाशित किये गये व किये जा रहे हैं तथा यह ग्रन्थ विश्व-विश्रुत है। इस पर अनेक समीक्षात्मक-विवेचनात्मक तथा कई आलोचनात्म लेख व पुस्तकें सब कुछ लिखा गया है। प्रत्येक आलोचना के युक्तियुक्त उत्तर भी प्रकाशित हुए। कोई भी आलोचना जब टिक न सकी तो कतिपय मतान्ध वा स्वार्थीजनों द्वारा राजकीय अथवा न्यायिक हस्तक्षेप कराकर मानव को हर क्षेत्र में सच्ची राह दिखाने वाले इस अनुपम ग्रन्थ के प्रचार एवं प्रकाशन को ही रोक दिये जाने के उपक्रम किये गये पर निर्णय सदा **सत्यार्थप्रकाश** के पक्ष में ही रहे एवं हम सगर्व कह सकते हैं कि सत्य की विजय सदैव होती रहेगी। अभी हाल ही में ऐसे ही एक वाद (मुकदमे) के दिल्ली के एक न्यायालय में विचारार्थ उपस्थित होने की बात सुनने में आई है, जो अवश्य दुर्भाग्यपूर्ण है।

जनमानस महान् ग्रन्थरत्न **सत्यार्थप्रकाश** से और अधिक परिचित हों इसी सदुद्देश्य से मैने महान् दार्शनिक एवं शिक्षाविद् आचार्य सत्यव्रत 'राजेश' का यह लेख पुनः प्रकाशित कराने की आवश्यकता अनुभव की तभी यह लघु पुस्तिका आपके हाथ में आ सकी है। आशा है पाठक इस प्रयास से अत्यधिक लाभान्वित होंगे एवं इसे पढ़ कर **सत्यार्थप्रकाश** से अपने घरों को शोभायमान कर अपने परिवार एवं आने वाली संतति के लिये ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करेंगे, सुनिश्चित करेंगे।

विश्व के निष्पक्ष विचारशीलों का मानना है कि कोई ऋषिकल्प आप्त पुरुष ही **सत्यार्थप्रकाश** के प्रणेता के हृदय की गहराई, पवित्रता व कल्याणकामना की

थाह पाने में समर्थ हो सकेगा। इस संबंध में डॉ. भारतेन्द्रनाथ (महात्मा वेदभिक्षु) की यह भावांजलि हमें शतशः सत्य प्रतीत होती है –

युग युग तक अमर रहेगी, ऋषि दयानन्द की गाथा।
मानव उसको स्मरण करेगा, कह कर अपना त्राता।।

पुस्तक की साजसज्जा व प्रकाशन में भारतीय संस्कृति के प्रति अप्रतिम श्रद्धा रखने वाले हाइमेन कम्प्यूप्रिंट के **श्री हिमांशु सोनी** के सहयोग हेतु उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मेरी सहधर्मिणी देवी **सुशीला** एवं सुयोग्य पुत्रत्रय– **महेश, रमेश, योगेन्द्र** ने सदा लोकमंगल के मेरे कार्यों को प्रोत्साहित न किया होता एवं सर्वथा मेरा साथ न निभाया होता तो मै वह न कर पाता जो आज करने में सक्षम हूँ, परमेश प्रभु महर्षि मिशन के प्रति उनकी निष्ठा इसी प्रकार बनाये रखें, यह मेरी कामना है।

– चान्दरतन दमानी

चैत्र प्रतिपदा संवत् २०६५ विक्रमी
सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,१०९
दिनांक, ७ अप्रैल सन् २००८ ई.

C.R. Damani

***Trustee,* ARYA TRUST BURRABAZAR**
1, Munshi Sadaruddin Lane, Kolkata-700 007

पुस्तक प्राप्ति स्थान

AND

***Director,* Flight Express Travel (India) Pvt. Ltd.**
2-B, Grant Lane, Suite No. - 207, Kolkata - 700 012
Phone : 093310 45322; e-mail : india@flightexpress.net

आभार – **वेदप्रकाश** मासिक, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली एवं
आर्यसमाज बड़ाबाजार, कोलकाता–७

. . . . . .

IATA accredited एअर टिकेटिंग एजेन्ट्स Flight Express Travel के सौजन्य से आर्य ट्रस्ट बड़ाबाजार कोलकाता–७०० ००७ के ट्रस्टी चान्दरतन दमानी द्वारा प्रकाशित एवं हाईमेन कम्प्यूप्रिंट (०३३) २८६० ३६७४ द्वारा मुद्रित।

ओ३म्

सत्यार्थप्रकाश - एक मूल्यांकन

– डॉ० सत्यव्रत राजेश
ज्वालापुर, हरिद्वार

डॉ० चन्द्रभानुजी अकिंचन एक छात्र को शोध करा रहे थे। उन्होंने उस छात्र को निर्देश करते समय अनेक ग्रन्थों को पढ़ा। किन्तु जब उन्हें **सत्यार्थप्रकाश** मिला तो कहने लगे कि वर्षों रात-दिन एक करके जो मैंने उपलब्ध किया उससे अनेक गुणा ज्ञान इस एक पुस्तक में मिल गया। मेरा दुर्भाग्य रहा कि मैंने इस ग्रन्थ को पहले नहीं पढ़ा। वस्तुत: **सत्यार्थप्रकाश** ज्ञान का भण्डार है। हितोपदेश में शास्त्र की परिभाषा दी है –

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य नेत्रं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव स: ॥

शास्त्र अनेक सन्देहों की निवृत्ति करनेवाला, परोक्ष ज्ञान का दर्शक तथा सबका आन्तरिक नेत्र है। जिसके पास शास्त्ररूपी नेत्र नहीं है वह वस्तुत: आँखें रहते भी अन्धा है– शास्त्र के (ये) समस्त लक्षण **सत्यार्थप्रकाश** में घटते हैं। उसे पढ़ने से अनेक प्रकार के सन्देहों की निवृत्ति होती है। जगत कैसे बना, कहाँ बना तथा मरने के बाद जीव की क्या गति होती है, आदि अनेक अप्रत्यक्ष तथ्यों का उद्घाटन होता है तथा ज्ञानचक्षुओं को खोलने में वह पूर्ण शक्त है। अत: कहा जा सकता है कि सत्यार्थप्रकाश न पढ़नेवाला ज्ञान के क्षेत्र में अन्धा है।

१. सन्देह निवारक

समस्त सत्यार्थप्रकाश को पढ़ जाइये, उसमें एक पृष्ठ भी ऐसा न मिलेगा जिसमें सन्देहों की निवृत्ति न हो। अनेक धार्मिक उलझनों में पड़े

व्यक्तियों ने सत्यार्थप्रकाश से मार्ग तलाशा। सत्य को हस्तामलकवत् (crystal clear) दिखाने में सत्यार्थप्रकाश अप्रतिम है। उसे पढ़कर ऐसा लगने लगता है मानो व्यक्ति अन्धकार से प्रकाश को पा गया हो। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के प्रार्थी इसे अवश्य पढ़ें, मार्ग मिलेगा।

एक बार एक युवक ने, जो विद्युत्-विभाग में काम करता है, बताया कि मैं आर्यसमाजी कैसे बना। उसने बताया कि मैं गांव का रहनेवाला हूँ। धर्म की ओर मेरी रुचि बचपन से ही थी। हमारे गाँव में शिवालय था। मैं प्रतिदिन मन्दिर में जाता, शिव के दर्शन करता तथा उस पर जल चढ़ाता। कुछ समझ आने पर किसी को 'शिव शिव', किसी को 'जयगोपाल', किसी को 'जय गणेश देवा' तथा किसी को 'जय माता दी' आदि कहते सुनकर मेरे बाल मन में यह भाव जगा कि इनमें असली और सच्चा भगवान कोन है? एक दिन हमारे गाँव में एक साधु आए। वे भाँग-सुलफा पीते तथा अपने निकट आनेवालों को पिलाते थे। मैं उनकी इस बात को तो न करता था, फिर भी एक दिन उनके पास जाकर मैंने उनसे निवेदन किया कि महाराज, मेरे मन में यह शंका है कि असली भगवान कौन-से हैं? वे शैव थे। उन्होंने बताया कि असली तथा सबसे बड़े भगवान **शिवजी** हैं। सब देवता उनके आगे हाथ जोड़ते तथा 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' करते हैं। सभी उनकी पूजा करते हैं। भगवान राम ने भी लंका पर चढ़ाई करने से पहले उनकी पूजा की थी। रामजी तो विष्णु के अवतार थे। जब विष्णु को भी विजय प्राप्ति के लिए शिव का आश्रय लेना पड़ा तो इसमें क्या सन्देह रह जाता है कि सबसे बड़े शिवजी ही हैं! और देवता तो थोड़ा देते हैं, किन्तु शिवजी तो औधड़ दानी हैं। सब कुछ अपने भक्तों में बाँट देते है, अपने पास कुछ भी नहीं रखते। उनकी बातों का मुझपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं पक्का शिव-भक्त बन गया तथा उनके बताए मन्त्र 'ओं नमः शिवाय' का

श्रद्धा से जाप करने लगा। अब मैं निश्चिन्त था।

किन्तु शायद मेरे भाग्य में शान्ति नहीं थी। हुआ यह कि हमारे गाँव में मुखिया ने देवी का जागरण कराया। धार्मिक अनुष्ठान समझकर मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। रात-भर देवी के गुणों को सुनकर मैं अभिभूत हो गया। भजनों तथा प्रवचनों द्वारा देवी की अपूर्व महिमा जो गाई गई। बिन बेटेवालों को माँ ने बेटे दिए, निर्धनों को धन से भर दिया, भक्तों की आपत्ति में रक्षा की, मरों को जिलाया, असुरों का संहार किया। क्या अद्‌भुत महिमा है देवी माँ की ! मैंने तो किसी देवता की इतनी महिमा पहली बार सुनी थी। प्रात: जागरण समाप्त होने पर मैं मण्डली के अध्यक्ष से मिला और उनके सामने सच्चा भगवान कौन है, यह प्रश्न रखा। उन्होंने मुझसे ही पूछा कि माँ बड़ी होती है या बच्चे? मैंने कहा कि माँ ही बड़ी होती है। वे बोले कि माँ देवी है या शिव आदि? मैंने कहा कि देवी ही माँ है। उन्होंने बताया कि शिव का माहात्म्य भी शक्ति रूपिणी माँ के कारण ही है। यदि शिव में से शक्तिरूपी 'इ' निकाल दें तो शिव 'शव' रह जाता है। और पता है, शव किसे कहते हैं? लाश को। बताओ, लाश भी कुछ कर सकती है? जब उनके साथ शक्तिरूपी 'इ' लग जाता है तब वह 'शिव' बन जाता है तथा लोगों द्वारा पूजा जाता है। अत: असली तत्त्व तो देवीरूपी शक्ति है। वही सच्ची है, महान् है और असली है।

उनकी बातें सुनकर मुझे बहुत पश्चाताप हुआ अपनी पूजा पर। इतने दिन तक मैंने शिव की भी उपासना की। देवी मैया का धन्यवाद है कि उसने अपनी कृपा से अपने सच्चे रूप का दर्शन कराया। सचमुच देवी की महिमा अपार है, तभी तो उनके भक्त सारी रात गाते हुए नहीं थकते। बाद में तो पता चला कि वे शराब आदि पीकर भी गाते हैं। किन्तु उस समय तो शेरोंवाली ही मेरी आराध्य बन गई थी। सच्चा साथी मिलने पर

गुड़ियों से कोई क्यों खेले? मैं माँ का भक्त तथा प्रचारक बन गया। रिश्तेदारों में भी जाता तो वहाँ सबको देवी के गीत सुनाकर उसके भक्त बनाने का प्रयत्न करता।

मेरा यह उन्माद एक वर्ष भी पूरा न कर सका कि उसको एक झटका लगा। हमारे गाँव में ब्राह्मणों के यहां एक संन्यासी आए। वे किसी का पकाया अन्न भी नहीं खाते थे। अपना भोजन अपने हाथ से बनाते थे। विद्वान भी थे। संस्कृत में बात कर सकते थे। उनके व्याख्यान होते थे जिसमें वे विष्णु भगवान के महत्त्व को दर्शाते थे। कैसे भगवान ने मोहिनी रूप रखकर असुरों से अमृत की रक्षा की। यदि वे ऐसा न करते तो असुर अमृत पीकर अमर हो जाते। कैसे अवतार धारण करके असुरों का संहार किया तथा स्वभक्तों की रक्षा की। कैसे चक्र सुदर्शन से राहु का सिर काट डाला, आदि।

एक दिन मैं उनके चरणों में उपस्थित हुआ और अपनी समस्या उनके सामने रखी कि महाराज, असली भगवान कौन हैं जो सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हों? मेरी बात सुनकर वे हँसे और बोले कि क्या भगवान भी अनेक हैं? मैंने उनसे कहा कि शिवजी, गणेश, देवी आदि सब तो हैं। वे बोले कि ये सब देवता तो कहे जा सकते हैं, भगवान नहीं। भक्तों की रक्षा और असुरों का संहार करने के लिए भगवान ने अनेक अवतार लिये, क्या आप बता सकते हैं कि वे अवतार किसके थे? मैंने कहा कि विष्णु भगवान के थे। बोले कि जिसके ये अवतार हुए वह असली हुआ या दूसरे?

मेरी आँखों से पर्दा हट गया। वस्तुत: गणेश देवा, महादेव और देवी ये देव ही तो हैं, भगवान कहाँ हैं ? सभी कथावाचक भी बतलाते हैं कि सृष्टि का पाप मिटाने, भक्तों का उद्धार करने और असुरों का संहार

करने के लिए भगवान ने जो मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध के अवतार लिए अथवा कल्कि अवतार लेंगे वे सब विष्णु के ही तो थे। वास्तव में विष्णु ही भगवान हैं। क्षीर सागर में शेष-शय्या पर लेटे हुए, लक्ष्मी जिनके चरण दबा रही हैं, ऐसे भगवान को छोड़कर अन्य की पूजा करना कहाँ की बुद्धिमानी हैं? जिस लक्ष्मी के पीछे संसार भागता है वह उनके चरणों की चेरी है। सच कहते हैं लोग कि गुरु किसी विद्वान को ही बनाना चाहिए। विद्वान न मिलने के कारण मैं अभी तक देवताओं के ही पीछे भटकता रहा। अब पता चला असली भगवान का। असली भगवान तो विष्णुजी ही हैं। मैं अभिभूत हो गया। असली भगवान का पता जो चल गया।

किन्तु यह अभिभूत होने का भूत अधिक समय नहीं रहा। मैं कार्तिक की पूर्णिमा को हरिद्वार गया। वहाँ एक दुकानदार के पास अनेक स्तोत्रों की पुस्तकें थीं। मैंने विष्णु स्तोत्र माँगा। उसने दे दिया। सस्ता ही था। १ रुपये मूल्य का। मैंने सस्ते देखकर दसों स्तोत्र ले लिये। देखने में हर्ज भी क्या है ! क्या पता किसी में कोई काम की बात मिल जाए! उनमें से जिसका भी स्तोत्र पढ़ता, वही अधिक महत्त्वशाली लगता। मैं अच्छे चक्कर में पड़ा। यदि विष्णु स्तोत्र ही खरीद लेता तथा औरों के न लेता तभी अच्छा था। किन्तु क्या करूं ! मेरा दुर्भाग्य, जो सस्ते के चक्कर में सारे खरीद लाया। उनमें चण्डीदेवी, वैष्णवदेवी तथा सन्तोषीदेवी की महिमा देखो तो वे सबको पीछे छोड़ दें। मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। किसकी स्तुति करूँ और किसे छोड़ूँ, मैं यह निर्णय न कर पाता। अच्छे हवन करते हाथ जले।

फिर मैंने सोचा कि कोई नाराज न हो, एक दिन एक स्तोत्र का पाठ करता तथा दूसरे दिन दूसरे का। इस प्रकार सभी की बारी आ जाती थी। मुझे भी सन्तोष हुआ कि चलो सभी प्रसन्न रहेंगे कि हमारा भी भक्त

है। मुझे भी प्रसन्नता हुई कि परमात्मा ने मेरी मुश्किल हल कर दी। किन्तु यह मानसिक शान्ति भी अधिक समय तक स्थिर न रही। एक दिन मेरे मन में आया कि सब कहते हैं कि भगवान एक है और मैं अनेक देवताओं की स्तुति करता हूँ। इनमें जो सच्चा होगा क्या वह नाराज न होगा कि यह मुझे भी अन्यों के बराबर मानता है? राजा और चपरासी को यदि बराबर सम्मान दिया जाए तो क्या राजा को बुरा न लगेगा? अच्छी मुसीबत गले डाली! किसी को न पूछते तो अच्छा था। अपने शिवजी पर जल चढ़ा आते थे, न किसी का छोटे-बड़े का झगड़ा था और न डरने-भटकने का। पर अब तो ये आफत गले बाँध ली है। अब तो भगवान ही इससे पार करें। मैं प्रत्येक आनेवाले से पूछता, किन्तु सब पहले की भाँति उलझाते, समाधान कोई न करता। सब अपने-अपने आराध्यदेव को बड़ा बताते। मैं तो चिन्ता में सूख गया।

किन्तु एक दिन मेरे भी भाग्य जगे। हमारे गाँव की एक लड़की का विवाह एक आर्यसमाजी परिवार में हुआ। उनका विवाह संस्कार भी निराला था। **न उन्होंने गणेश का पूजन किया न नवग्रहों का।** यज्ञ हुआ और प्रत्येक विधि की वहाँ बड़ी सुन्दर व्याख्या की गयी। मैं आर्यसमाज से प्रेम तो न रखता था क्योंकि मुझे बताया गया था कि ये नास्तिक तथा झगड़ालू होते हैं। न ये राम को मानते हैं न कृष्ण को, न देवी को न गणेश को, न शिव को और न विष्णु को। किन्तु हमारे गाँव में पहला ही आर्यसमाजी संस्कार था, अत: देखने के लिए गाँव के स्त्री-पुरुष जुट आए थे। उनमें श्रद्धालु कम थे, तमाशा देखनेवाले अधिक। संस्कार के समय बड़ी शान्ति रही। बच्चे भी चुपचाप थे। कोई बोलता तो वे उसे बाहर जाकर बात करने को कह देते। संस्कार से सारा गाँव प्रभावित हुए बिना न रह सका। सबकी जबान पर एक ही बात थी कि ऐसा संस्कार हमने जीवन में नहीं देखा। हमें तो अब पता चला कि

विवाह में वर-वधू के क्या कर्तव्य होते हैं। लाजाहोम, सप्तपदी आदि का क्या महत्त्व है। बस एक बात की आलोचना तो करते थे कि इन्होंने परिक्रमाएँ चार ही कराई, सात नहीं। बाद में तो पता चला कि गृह्यसूत्रों में चार ही परिक्रमाओं का उल्लेख है। सम्भवत: उन्होंने सप्तपदी के स्थान पर सात परिक्रमाओं को ले लिया हो। फिर भी उस संस्कार की गाँव भर में धूम रही तथा महीनों वही चर्चा का विषय रहा।

एक दिन मेरे मन में आया कि मैं कभी उन आर्य सज्जन से मिलूँ। शायद उनके पास मेरी समस्या का कोई समाधान हो। मुझे किसी की नास्तिकता से क्या लेना, वे बात तो बुद्धिपूर्वक करते हैं। मैं उनसे कह आया कि चाचाजी, जब आपके यहाँ वे आर्यपुरुष आएँ तो मुझे सूचित करा देना, मुझे उनसे कुछ पूछना है। एक दिन फिर गाँव में शोर मचा कि वे आर्य सज्जन आए हैं। वे लड़की को छोड़ने आए थे। मुझे पता चला तो मैं प्रात: ही पहुँचा। परिवार के मुखिया से पूछा कि वे कहाँ हैं तो उन्होंने बतलाया कि ऊपर छत पर सन्ध्या कर रहे हैं। मेरे मन को झटका सा लगा। नास्तिक और सन्ध्योपासन ! कुछ अजीब-सा लगा। मैं देखना चाहता था कि ये सन्ध्या कैसे करते हैं। मैं गृहस्वामी से पूछकर तथा उनके द्वारा चुपचाप रहने का आदेश पाकर ऊपर गया। वे नयन मूँदे, ध्यानमग्न हुए कुछ मन्त्र बुदबुदा रहे थे। अच्छा लगा। मैं भी छत पर बैठकर उनकी मन्त्र-विहीन नकल करने लगा। मुझे तो उन पर श्रद्धा हो आई। जब वे उठे तो मैंने उनके चरण-स्पर्श किए और पूछा कि आप क्या कर रहे थे? उन्होंने कहा कि सन्ध्योपासन। मैंने पूछा कि लोग तो कहते हैं कि आर्यसमाजी नास्तिक होते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि **हम परमपिता परमात्मा की वेदवाणी को प्रमाण मानते हैं, तथा उसी के द्वारा निर्दिष्ट कार्य करने का प्रयास करते हैं।** सन्ध्योपासन भी हम वेद तथा ऋषियों की पद्धति से करते हैं। अन्य लोग मनमाने ढंग से

पुराणों को प्रमाण मानकर पूजादि करते हैं। हम वैसे नहीं करते, अत: वे हमें नास्तिक आदि कहकर बदनाम करते फिरते हैं। मैंने पूछा कि आप राम-कृष्ण आदि को क्यों नहीं मानते? वे हँसकर बोले कि राम-कृष्ण को न माननेवालों की आर्यपर्वपद्धति में जन्माष्टमी, सीताष्टमी तथा रामनवमी के पर्व मनाने का उल्लेख भी देखा है या सुनी बात कह रहे हो? मैंने बताया कि लोग यही कहते हैं कि आर्यसमाज रामकृष्णादि को नहीं मानता, अत: मैंने पूछ लिया। उन्होंने कहा कि वेद में भगवान को तो 'अकायम्' अर्थात् शरीर धारण न करनेवाला कहा है। **शरीरधारी तो जीव होता है, परमात्मा नहीं।** उसीके अनुसार हम राम-कृष्ण आदि को अपने मान्य ऐतिहासिक महापुरुष मानते हैं तथा वे लोग भगवान का अवतार मानते हैं। हमारे द्वारा उन्हें परमात्मा न मानने के कारण वे हम पर यह आरोप लगाते हैं कि आर्यसमाज उन्हें मानता ही नहीं। मैंने पूछा कि क्या राम-कृष्ण भगवान के अवतार नहीं थे? उन्होंने कहा कि अवतार का अर्थ उतरना होता है। उतरना एकदेशी का तो हो सकता है, सर्वव्यापक का नहीं। दूसरे, क्या कोई ऐसा काम है जिसे परमात्मा न कर सके? वह तो सर्वशक्तिमान है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय जैसे महान कार्य वह बिना किसी की सहायता के तथा बिना शरीर धारण किए करता है, तब क्या किसी व्यक्तिविशेष को मारने के लिए उसे अपना नियम तोड़कर शरीर धारण करना पड़ा? सृष्टि की प्रलय तो बिना शरीर धारण किए करे तथा रावण-कंसादि को मारने के लिए उसे शरीर धारण करना पड़े ? तोड़ने से तो निर्माण कार्य कठिन होता है। भव्य भवन का निर्माण सब नहीं कर सकते, किन्तु उसे तोड़ सब सकते हैं। अत: अवतार मानने पर परमात्मा में अपूर्णता माननी पड़ेगी। उन्होंने अन्य तर्क और प्रमाण भी दिए।

बातें करते हुए हम नीचे आ गए। उनके बैठने पर मैंने उनसे कहा

कि बहुत दिन से मेरे मन में एक शंका है। वह यह कि सबसे बड़ा भगवान कौन-सा है? वे बोले कि मैं आपके प्रश्न को समझा नहीं। मैंने खुलासा करते हुए कहा कि मेरा प्रश्न यह है– शिव-ब्रह्मा-बिष्णु-देवी आदि में बड़े कौन हैं ? वे कहने लगे कि मुफ्त ही पूछना चाहते हो ? मैंने कहा कि जो आप चाहे ले लें किन्तु इस झंझट से मेरा पिण्ड छुड़ा दें। इसने मुझे सुखा दिया है। मैं आजीवन आपका आभारी रहूँगा। उन्होंने कहा कि यह बताने का शुल्क पाँच रुपया लगेगा। मैंने कहा कि चाहे पचास रुपया ले लो, पर इस भूत से मेरा पीछा छुड़ाओ। वे बोले कि इससे भी आपका पिण्ड छूट जाएगा तथा भूत से भी। मैंने पाँच रुपए दिए और उन्होंने थैले से निकालकर **सत्यार्थप्रकाश** दिया कि यह अज्ञान-जनित लाखों रोगों की एक ही औषध है।

मैंने घर आकर **सत्यार्थप्रकाश** पढ़ा तथा मुझे अपनी मूर्खता पर बहुत हँसी आई। जिनके छोटे-बड़े होने के भेद से मैं घबरा रहा था वे तो एक ही परमात्मा के गुणवाचक विभिन्न नाम हैं। उसे कल्याण करने से **शिव** (शिवु कल्याणे), व्यापक होने से **विष्णु** (विष्णु व्याप्तौ) जगत्क्रीड़ा आदि के कारण देव या देवी आदि कहते हैं। **जो शंका मैं वर्षों से मन में पाले फिरता था, जिसका कोई समाधान नहीं मिल रहा था,** वह **सत्यार्थप्रकाश** के (समुल्लास) प्रथम अध्याय ने ही हल कर दी। इसी प्रकार **सत्यार्थप्रकाश ने हजारों अँधेरे जीवनों में प्रकाश भरा है।** कैसा भी संशय मन में हो उसका समाधान सत्यार्थप्रकाश में कहीं-न-कहीं मिल ही जाता है।

२. सत्यार्थप्रकाश जीवन-दर्शक है

मेरे अपने जीवन की घटना है। मैं अध्ययन में परिश्रम करता था तथा अच्छा छात्र माना जाता था। एक बार एक ज्योतिषी हमारे गाँव

म आया तथा यह प्रसिद्ध किया कि वह हाथ देखकर व्यक्ति के भूत-भविष्यत की बातें बतला देता है। हमारी पूज्या माताजी को भी हमारा भविष्य जानने की इच्छा हुई तथा उन्होंने उन्हें घर बुलाकर हमारा हाथ दिखाया। ज्योतिषीजी ने हाथ देखकर बताया कि इसके भाग्य में धन तथा यश तो बहुत है किन्तु विद्या नहीं। उस समय आर्यसमाज के सिद्धान्तों से मेरा विशेष परिचय नहीं था। अत: मैं भाग्य को अमिट रेखा मान बैठा। मेरे मन में आया कि जो वस्तु भाग्य में नहीं है वह मिल ही नहीं सकती चाहे कितना ही परिश्रम किया जाए। यह सोचकर पहले मैं पढ़ने से उपेक्षा करने लगा और फिर पढ़ना ही छोड़ दिया। वर्षो बाद मुझे **सत्यार्थप्रकाश** पढ़ने को मिला। उसके 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में लिखा था– **''पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा है।'' यह वाक्य मेरे जीवन में प्रकाशस्तम्भ सिद्ध हुआ** और मैंने अपने जीवन को विद्यार्जन की ओर लगाया। यद्यपि मुझे उस समय विद्याध्ययन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु **मैंने विद्या पढ़ी** और सिद्धान्तशिरोमणि, विद्यावाचस्पति, शास्त्री, प्रभारक, वेदशिरोपणि, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी०-ए० लिट्० (डॉक्टर ऑफ आर्यन लिटरेचर) आदि सम्मानित उपाधियाँ अर्जित की। वेद पढ़ा, पढ़ाया, वेद पर लिखा और लिखवाया (पी-एच० डी० के छात्रों द्वारा) अनेक वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिए तथा आज मैं जो कुछ हूँ सब उसी की कृपा है। अत: सत्यार्थप्रकाश जीवन का मार्ग दिखाता है।

३. सत्यार्थप्रकाश तथा अन्य मतों की आलोचना

सत्यार्थप्रकाश पर लोग एक आरोप यह लगाते हैं कि इसमें अन्य मतों की आलोचना की गई है। जो दूसरों की आलोचना करता है या गलती निकालता है उसे धर्म तो माना नहीं जा सकता, क्योंकि मनु ने धृति:, क्षमा आदि धर्म के लक्षण बतलाए हैं। खण्डन करनेवाला

क्षमाशील कैसे माना जा सकता है? उसे तो असहिष्णु कहना चाहिए। वे लोग कबीर को —

पत्थर पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजूं पहार।
इससे तो चक्की भली, पीस खाए संसार॥

कहता देखते हैं, पर कबीर की गणना अपने सन्तों में गर्व के साथ करेंगे। किन्तु सत्यार्थप्रकाश में मूर्ति पूजा की आलोचना उन्हे असह्य है। सर्वप्रथम विचारणीय यह है कि सत्यार्थप्रकाश की आलोचना सत्य है या असत्य? यदि वहाँ असत्य आलोचना की गई है तो उसका प्रतिवाद करना चाहिए। किन्तु प्रतिवाद कैसे करें ? क्योंकि सत्यार्थप्रकाश में उनके ही ग्रन्थों से उद्धरण देकर उनकी सच्ची समीक्षा की गई है। आलोच्य की आलोचना तो होनी ही चाहिए। यदि उस द्वारा की गई आलोचना सत्य है तो मनुष्य का धर्म है, कर्तव्य है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में वह सर्वदा उद्यत रहे। दूसरे, यदि आलोचना करना ठीक नहीं है तो साहित्य आदि की प्रत्येक विधा पर जो आलोचना ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं उन पर प्रतिबन्ध लगे। हमारे पास एम० ए० के प्रश्नों की उत्तरपुस्तिकाएँ परीक्षण के लिए आती हैं। जो छात्र प्रश्नों के उत्तर आलोचना प्रत्यालोचनापूर्वक देते हैं उन्हें हम अच्छे अंक देते हैं, तथा जो सामान्य उत्तर देते हैं उन्हें सामान्य अंक दिए जाते हैं। यहाँ भी सब विद्वानों पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए कि जो छात्र आलोचना-प्रत्यालोचनापूर्वक लिखे उसे उत्तीर्ण नहीं करना चाहिए, और जो सामान्य उत्तर दे उसे अधिक अंक देकर उत्तीर्ण किया जाए। क्या इससे विद्या का स्तर उच्च हो सकेगा? या कोई चिन्तक इसे मानने को तैयार होगा? **जब शिक्षा में निरन्तर सुधार के लिए आलोचना आवश्यक है तो धर्म में सुधार के लिए आलोचना आवश्यक क्यों नहीं?** क्या आप धर्म में विकृति चाहते है, शोधन नहीं ? याद रखें **जैसे**

भोजन की विकृति शरीर को रोगी बना देती है उसी भांति धर्म की विकृति अन्त:करण को रोगी बना देती है तथा रोगी मानसिकता किसी को उबरने नहीं देती। फिर यदि **गलत** को गलत न कहकर ठीक कहा जाए तो वह गलत ही व्यक्ति के पल्ले पड़ जाता है। यदि जो जैसा करे उसे करने दें तो शिक्षक छात्रों की कापियों को देखते क्यों हैं? 'सब ठीक है' लिख दिया करें। क्या आप अपने बच्चों के लिए ऐसे शिक्षक को पसन्द करेंगे जो गलत प्रश्नों पर सही के चिह्न लगाए? नहीं करोगे न ? फिर धर्म के विषय में गलत पर गलत निशान लगानेवालों को आप असहिष्णु कैसे कह सकते हैं ?

एक आर्यपुरुष एक शिक्षण-संस्था चलाते हैं। एक दिन उनके पास एक अभिभावक आए। आर्यजी उस समय **सत्यार्थप्रकाश** का पाठ कर रहे थे। उसे पढ़ता देखकर वे सज्जन बोले कि क्या आप भी इसे पढ़ते हैं ? यह अच्छा ग्रन्थ नहीं है। इसमें सबका खण्डन किया गया है। व्यक्ति को चाहिए कि अपनी बात कहे। किसी का खण्डन नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को लोग असहिष्णु समझते हैं। मेरी दृष्टि में तो ऐसा करना गलत है। सबको स्वतन्त्रता होनी चाहिए, जो जैसा चाहे कहे, जैसा चाहे लिखे।

उनके चले जाने पर उन्होंने कक्षा ३, जिसमें उनका बच्चा पढ़ता था, की अध्यापिका को बुलाया और पूछा कि मनोज कक्षा में कैसा चल रहा है ? उसने बताया कि अन्य विषयों में तो साधारण है किन्तु गणित में कमजोर है। वे बोले कि आज वह गणित के जो प्रश्न हल करे उन्हें बिना देखे सब पर सही का चिह्न लगा देना। उसने कहा कि उसके पिताजी प्रतिदिन उसकी कापियों को देखते हैं। यदि मैंने गलत को सही कर दिया तो वे कल ही आ जाएंगे। वे बोले कि आप चिन्ता न करें मैं सब सँभाल लूँगा। अध्यापिका ने ऐसा ही किया। उस दिन

उन्होंने जो कापी देखी तो उबल पड़े। बेटे से पूछा कि किस गधे ने आज तेरी गणित की कापी जाँची है ? बच्चे ने कहा कि ममता मैडम ने ही देखी थी। बोले, गधी है, पक्की गधी! गलत सवालों पर भी ठीक का निशान लगा रखा है। अगले दिन पुत्र तथा कापी को लेकर आए और आते ही क्रोध से बोले कि तीसरी कक्षा की अध्यापिका को बुलाइए। आपने ऐसी-ऐसी अध्यापिकाएँ रख रखी हैं जिन्हें कुछ आता ही नहीं। आप उन्हें हटाइए और उनके स्थान पर योग्य अध्यापिका रखिए। आर्य सज्जन पूछने लगे कि क्या बात हुई? आज तो बहुत क्रुद्ध नजर आ रहे हो ? वे बोले कि क्रोध की तो बात ही है। ये गणित के प्रश्न देखिए। सारे गलत प्रश्नों पर सही का चिह्न लगाया हुआ है। आर्यजी बोले कि उनका दोष नहीं है। कल मैंने ही कहा था कि किसी का खण्डन न करना। खण्डन करनेवाला असहिष्णु माना जाता है। जो जैसा चाहे कहे या लिखे। वे बोले कि ऐसे तो सारे बच्चे अनुत्तीर्ण होंगे। महाराज, **गलत को गलत कहना चाहिए और ठीक को ठीक**। ऐसा न करेंगे तो बालक को कैसे पता चलेगा कि उसका प्रश्नोत्तर अशुद्ध है और कैसे वह अपनी गलती ठीक करेगा ?

आर्यजी कहने लगे कि मैंने कल के आपके दिए आदेश का ही पालन कराया था। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि जब हम ऐसा करते हैं तो आप कहते हैं खण्डन आवश्यक है, ओर जब यही काम **सत्यार्थप्रकाश** करता है तो वह गलत कैसे हो गया ? वह सज्जन तो नीची गरदन करके चले गए। उसके बाद उन्होंने कभी नहीं कहा कि खण्डन नहीं करना चाहिए तथा आर्यजी ने शिक्षिका को प्रश्न ठीक समझाने को कह दिया।

४. सत्यार्थप्रकाश एक दर्पण है

सत्यार्थप्रकाश दर्पण की भाँति जिसका जैसा चेहरा होता है उस

वैसा ही दिखा देता है। कोई वृद्ध यदि अपना झुरियों से भरा मुँह देखकर दर्पण को दोष देने लगे तो इसमें दर्पण का क्या दोष हैं ? इसी प्रकार यदि व्यक्ति **सत्यार्थप्रकाश** की आलोचना से क्षुब्ध होता है तो उसे सोचना चाहिए कि यदि सत्यार्थप्रकाश सत्य तथा असत्य को स्पष्टतया दिखला देता है तो उसके लिए दोषी असत्य है, सत्यार्थ प्रकाश या उसके महान् प्रणेता महर्षि दयानन्द नहीं। **महर्षि दयानन्द तो तब दोषी माने जाते जब वे सत्य को असत्य रूप में प्रकट करते। यदि उन्होंने असत्य को असत्य कह दिया तो यह उनका दोष नहीं, अपितु उनका महत्त्व है।** याद रखो, सत्य को सत्य कहना तो अनेक लोग अपना सकते हैं किन्तु असत्य को असत्य कहनेवाले कुछ विरले ही होते हैं। **असत्य को असत्य कहनेवालों को गालियाँ, पत्थर, विष और गोली का पुरस्कार मिला करता है।** दर्पण का दोष देखनेवाले अपने स्वरूप को सुधारें जिससे दर्पण में अपना रूप अच्छा दीखे। क्योंकि जैसे को तैसा दिखाना दर्पण का काम है, उसमें उसका क्या दोष ?

एक बहुत पुरानी कथा है। गाँव का एक युवक नगर में गया। उन दिनों गाँव के व्यक्ति का शहर जाना ऐसा था जैसा आजकल विदेश जाना। मुकद्दमे में या ब्याह का सामान लेने ही व्यक्ति शहर जाता था तथा वापस आकर लोगों को वर्षों हुई-अनहुई कहानी सुनाता रहता था। मानो वह चक्रव्यूह को बेधकर आया हो। नगर में उस युवक ने एक दुकान पर लोगों को कोई वस्तु हाथ में लेकर बाल ठीक करते, या उसे देखकर विविध भाव भंगिमाएँ बनाते तथा खरीदते देखा। पहले तो वह खड़ा देखता रहा। फिर उसने साहस बटोरकर दुकानदार से पूछा कि ये सब क्या देख रहे थे ? उसने शीशा उसके सामने करके कहा कि तू भी देख ले। उसने देखा तो एक हट्टा-कट्टा जवान दीखा। यह उसे देखकर मुस्काया तो वह भी मुस्काने लगा। इसने दुकानदार से पूछा कि इसमें

यह कौन है ? उसने बताया कि इसमें अपना ही चेहरा दीखता है। यह सुनकर युवक खिल उठा कि मैं इतना सुन्दर हूँ ? कहती तो मेरी पत्नी भी है कि आप बहुत सुन्दर है किन्तु मैं तो समझता था कि वह मक्खन लगाने के लिए ऐसा कहती है। उसने दुकानदार से कहा कि अब तो जब शहर आया करेंगे तब आपके यहाँ आकर इसे देखा करेंगे। दुकानदार ने कहा कि आप इसे खरीद ही लो, चार पैसे का ही तो है। युवक ने सोचा कि न दूँगा ताँगेवाले को चार पैसे, पैदल ही निकल जाऊँगा। चार कोस ही तो है। उसने वह शीशा खरीद लिया। दुकानदार ने सावधान किया कि यह बहुत कोमल चीज है। यदि गिर गया तो टूट जाएगा और फिर जुड़ेगा नहीं। इसे सँभालकर रखना ! युवक उसे घर ले आया और यह सोचकर कि यदि किसी को बताया तो वह अन्यों को बताएगा। फिर सब देखना चाहेंगे और यदि किसी के हाथ से छूट गया तो टूट जाएगा। उसने उसे अपने ट्रंक में कपड़ों के नीचे छिपाकर रख दिया। वह प्रात:काल ट्रंक खोलता, उसे देखता तथा अपना चेहरा देखकर प्रसन्न होता। एक दिन उसकी पत्नी ने देख लिया और पूछा कि यह क्या देखकर प्रसन्न हो रहे हो ? युवक ने घबराकर शीशा ट्रंक के भीतर रख दिया और तुरन्त ताला बन्द कर दिया। पत्नी को शक हो गया कि अवश्य कुछ दाल में काला है, अन्यथा घबराकर एकदम ताला क्यों बन्द कर दिया ? कुछ नहीं है, कहता था। जब कुछ नहीं था तो दिखाया क्यों नहीं? जिस दिन से शहर से आया है बदला-बदला सा लग रहा है। वह उसकी चाभी चुराने की ताक में लग गई। एक दिन दाव लग गया और नहाने गए की चाभी चुरा ली। उसके चले जाने के बाद सास से छिपाकर धीरे से ताला खोलकर सामान टटोलते समय उसे नीचे शीशा मिला। उसे देखा तो उसमें अपना रूप दिखाई दिया, एक सुन्दरी युवती। समझी कि शहर से इसी को लाया है। तभी तो उस दिन

से चाभी किसी को नहीं देता तथा इसे छिपाकर प्रसन्न होता है। लगी रोन ! हाय, मेरे तो भाग्य फूट गए ! अब उसे मेरी क्या आवश्यकता ह ! अब तो घर में यह डायन आ गई है। कैसी बेशरम है ! मुझे देखकर न डरी और न शर्मायी। डरे क्यों जब घरवाला ही उसका हो गया है ? लगी दहाड़ें मारकर रोने – हाय मैं लुट गई, मेरा घर बर्बाद हो गया!

शोर सुनकर सास दौड़ी आई कि अचानक बहू को क्या हो गया? उसने आकर पूछा कि क्या हुआ जो तू रो रही और बहकी-बहकी बातें कर रही हैं? उसने **शीशा** आगे करके कहा कि **देख ले अपने पूत की करतूत !** शहर गया था और ले आया मेरी छाती पर धरने को पत्थर। जब मैं ऐसी बुरी थी तो क्यों लाए थे ब्याह कर ? ले आते उसी चुड़ैल का !

सास ने शीशा लेकर देखा तो उसे अपना बूढ़ा रूप दिखाई दिया। देखकर कहने लगी कि डूब ही गया। लाना था तो किसी जवान को लाता। ले आया साठ वर्ष की बुढ़िया को। न काम की न काज की, ढाई सेर नाज की। हुँ ! बहू बोली, अपने बेटे का पक्ष ले रही हैं जो बूढ़ी बता रही हैं। आपकी ही शह पर लाया होगा उसे शहर से, और अब कह रही हैं बुढ़िया है, साठ बरस की है। ६० की है या बीस की ? कैसे टमाटर-से गाल हैं लाल लाल। सारे बाल काले हैं। ये साठ बरस वाली के होते हैं या २० बरस वाली के ? सास बोली कि बहू, मैंने ये बाल धूप में सफेद नहीं किए। क्या मैं अन्धी हूँ जो मुझे दीखता नहीं ? सारे सिर के बाल सफेद हैं और मुँह पर झुर्री पड़ी हुई हैं। क्या ऐसी ही होती है जवान ? अब सास उसे बूढ़ी बताए और बहू जवान। दोनों की ऊँची आवाज सुनकर बूढ़ा आकर पूछने लगा कि यह घर में क्या रोना-धोना और जवान-बुढ़िया का झगड़ा लगा रखा है ? क्या हो गया? बहू ने जोर जोर से रोना शुरू कर दिया और बोली कि हो क्या गया, मेरे भाग्य फूट गए। एक और

लाकर रख दी मेरी छाती पर! सास ने कहा कि भाग्य तेरे नहीं सारे घर के फूट गए। वह तेरी छाती पर नहीं मेरी छाती पर लाकर रख दी है। खिलाओ एक और निकम्मी को! सारी उमर तो न जाने कहाँ मरी, अब बूढ़ी होने पर इस घर के पल्ले पड़ गई! बूढ़ा बोला कि कुछ बात भी बताओगी या ये जवान बूढ़ी की पहेली बुझाती रहोगी ? बुढ़िया बोली कि होना क्या था, एक बुढ़िया और ले आया तेरा पूत। बहू ने कहा जवान है जवान, मैं तीन बार देख चुकी हूँ। बूढ़ा बोला कहीं है भी वह? घर में तो दीखती नहीं ? बुढ़िया ने दर्पण बूढ़े के सामने कर दिया। उसने उसमें एक बूढ़ा देखा और देखकर बहुत हँसा और बोला कि तुम दोनों की मति ही मारी गई। तुम्हें स्त्री-पुरुषों की भी पहचान नहीं ? भाग्यवानो, यह तो देख लेतीं कि कहीं औरतों के भी मूंछे हुआ करती हैं ? अरे, यह तो मूंछोंवाला बूढ़ा है बूढ़ा!

पाठक वृन्द ! अब आप बतलाइए कि तीनों व्यक्तियों को दर्पण में अपने-अपने रूप दीखे, इसमे दर्पण का क्या दोष? उसने तो जैसा चेहरा था वैसा दिखा दिया। इसी प्रकार **सत्यार्थप्रकाश** भी यथार्थ का दर्शक है। यदि चेहरा ठीक नहीं लगता तो बदल लो। प्रो० शरर ने ठीक ही लिखा था—

आइना चेहरे का हर दाग दिखा देता है,
उसकी फितरत का तकाजा है तो शिकवा कैसा ?
आप सत्यार्थ की तनकीद से नाराज न हों,
जनाब, चेहरा धो डालिये गुस्सा कैसा ?

५. सत्यार्थप्रकाश में आलोचना अति तीव्र है

एक आक्षेप यह भी किया जाता है कि समालोचना तो सभी करते हैं, किन्तु महर्षि दयानन्द ने बहुत तीखी आलोचना की है, जो ठीक नहीं है। थोड़ी-बहुत आलोचना तो ठीक थी किन्तु इतनी **कटु आलोचना**

की आवश्यकता नहीं थी। ऐसे लोगों से निवेदन है कि **कपड़ों में लगा सामान्य मैल तो साबुन आदि से छुड़ाया जा सकता है, यदि उस पर सालों का मैल जमा हो तो उसे आँच भी देनी पड़ती है तथा थपकी या धोबी के मोटे डंडे से पीटना भी पड़ता है, अन्यथा वह मैल दूर नहीं होता।** फर्श पर पड़ा सामान्य कूड़ा-कर्कट झाड़ू से साफ किया जा सकता है, किन्तु यदि फर्श पर सदियों का मैल जमा हो तो उसे झाड़ू से नहीं हटाया जा सकता। उसे हटाने के लिए खुर्पा, फावड़ा तथा तारों का ब्रुश काम में लाना पड़ता है। इसी प्रकार **संस्कृति पर पड़ा अनेक सहस्राब्दियों का मैल दूर हटाने के लिए महर्षि दयानन्द को खण्डन का तीव्र खांडा उठाना पड़ा।** उसके बिना काम चल ही नहीं सकता था। हल्की दवा से दीर्घकालीन रोग दूर नहीं होता।

६. सत्यार्थप्रकाश की तीव्र आलोचना का फल

विज्ञजन मानते हैं कि जाति में आज जो जीवन मिलता है यह उनकी तीव्र आलोचना का ही फल है। स्त्री-शिक्षा, शुद्धि-प्रचार, अस्पृश्यता-नाश, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, जन्म से जाति-पाँति आदि पर प्रतिबन्ध, विधवा-विवाह, स्वतन्त्रता की प्राप्ति, भोजन का बखेड़ा हटना, समुद्र पार करने पर भ्रष्ट न माना जाना, सब पर समान भाव आदि उनकी तीव्र आलोचनाओं का ही मीठा फल है। वे यदि ठोकर मारकर न जगाते तो जाति सो गई होती और परिणाम होता – उसकी मृत्यु। उनके तीखे खण्डन ने जाति को ऐसे बचा लिया जैसे एक युवक के तीखे शब्दों ने सरपंच को। देखिये —

एक गाँव के सरपंच को साँप ने काट लिया। सरपंच बहुत सज्जन, न्यायप्रिय, दयालु तथा ईमानदार व्यक्ति थे। उसके न्याय में दूध का दूध और पानी का पानी होता था। उसके लिए छोटे-बड़े सब बराबर थे।

न्याय तो न्याय है, वह छोटे-बड़े को नहीं देखता। उसके सामने अपराधी मात्र अपराधी है तथा निरपराध मात्र निरपराध, चाहे वह कोई भी हो। कई बार बड़े लोग उससे नाराज भी हो जाते थे, क्योंकि वे भी यदि अपराधी पाये जाते तो दण्ड से नहीं बच सकते थे। बड़े लोग अपने को अन्यों से कुछ विशिष्ट मानते हैं तथा इच्छा रखते हैं कि उनके साथ विशेष व्यवहार किया जाए। किन्तु सरपंच जी ने शास्त्रों में देखा था कि **न्यायासन पर बैठकर जो न्याय नहीं करता तो किए अन्याय का फल उसे ही मिलता है।** अत: न्यायाधीश को अपनी तथा न्याय की रक्षा करने के लिए न्याय ही करना चाहिए, भलें उससे कोई प्रसन्न हो या अप्रसन्न। **न्याय का आसन परमात्मा का आसन होता है।** सरपंच ने शास्त्र की बातें गाँठ बाँध ली और उस पर सदा आचरण करते थे। इसीलिए उनके सर्पदंश पर सबको, विशेषतया निर्बल वर्ग को चिन्ता थी कि यदि वे न रहे तो हमें न्याय कौन देगा ? उनके न रहने से हम अनाथ हो जाएँगे।

तुरन्त सर्पविष-चिकित्सकों को बुलाया गया। उन्होंने मनोयोगपूर्वक उनकी चिकित्सा की। किन्तु यह भी कहा कि यदि रात-भर इन्हें सोने न दिया जाए तो ये बच सकते हैं। अन्यथा क्या हो, कहा नहीं जा सकता। गाँववाले नाच-गान तथा ढोल-मंजीरे बजाकर उन्हें जगाने का भरसक प्रयास करने लगे। रात के दस बजे तक तो वे उन्हें जगाने में सफल रहे, किन्तु इसके बाद उनकी आँखें झपकने लगीं। नींद गहराने लगी तो उन्होंने सबसे कहा कि अब मुझे परेशान मत करो। जो होना है हो जाएगा, अब मुझे आराम से सोने दो। **सोने का परिणाम सब जानते थे– सरपंच की मृत्यु,** उनका सदा-सदा के लिए बिछुड़ जाना। सब एक दूसरे का मुँह देखने लगे। कुछ भावुक लोग आगामिनी विपत्ति का विचार करके रोने लगे। सब किंकर्तव्यविमूढ़ थे। क्या करें,

यह किसी की समझ में न आ रहा था। सब चिन्तित और उदास थे। इतने में एक युवक आगे आया और कहने लगा कि आप लोग यदि मेरे अपराध को क्षमा करा सकें तो मैं इनको रात-भर जगा सकता हूँ। लोगों ने कहा कि आप इन्हें रात-भर जगा दें, क्षमा का उत्तरदायित्व हमारा रहा। वह युवक सरपंच के स्वाभिमान को जानता था। बाल्यकाल से आज तक सब इनके आगे नत-मस्तक होते रहे हैं, आज तक किसी की हिम्मत इनसे आँख मिलाकर बोलने की नहीं हुई। वह युवक बोझिल पलकोंवाले सरपंच से कहने लगा – 'ए सरपंच !' पहले तो उस युवक का इस प्रकार बोलना ही सरपंच को अखरा। उन्होंने आग्नेय नेत्रों से उसे देखते हुए कहा कि 'बोलने की भी तमीज है या नहीं ?' क्योंकि जिस ढंग से वह युवक बोला था, सरपंच जी उसे सुनने के आदी नहीं थे। लोग उन्हें विनम्र भाव से पुकारा करते थे तथा यह युवक अक्खड़ ढंग से बोला था। किन्तु इतने पर ही बस कहाँ ? युवक ने उत्तर दिया कि 'बहुत दिन आप तमीज सिखा चुके, अब !, अब तो आगे जाने की तैयारी करो ! सारी उमर लोग दबते रहे, अब और नहीं दबेंगे। हम भी आदमी हैं। यहाँ कोई किसी से कम नहीं है। हम भी बराबर के हैं। आप को जो करना है कर लो!' युवक तो यह कहकर चला गया, किन्तु सरपंच का खून खौल उठा– 'यह इसकी हिम्मत हुई कैसे ? पकड़ो और इसकी हड्डी तोड़ दो। इस नीच की इतनी मजाल! अभी तो मैं जीता हूँ। कल इसकी खाल में भुस न भरवाया तो जानना। समझ लिया है कि मैं मर रहा हूँ तभी तो इतना ऊटपटाँग बोल गया है! आज तक कितना नम्र बनता था ! मानो नम्रता की मूर्ति हो। खुल गई असलियत की पोल। यही है दुनिया। जीवित के आगे झुकें तथा मरता देखें तो निन्दा करें। मैंने इसके खानदान पर इतने अहसान कर रखें हैं कि उन्हें ये सात जन्म भी नहीं चुका सकते।' उसकी बातों का उन्हें इतना दु:ख

हुआ कि क्रोध के कारण रात-भर सो न सके और बच गए।'

प्रात: जब डॉक्टर ने उन्हें देखकर प्रसन्नता प्रकट की और गाँववालों से कहा कि अब आपके सरपंचजी भय से बाहर हो गए तो गाँववालों की आँखों में हर्ष के आँसू आ गए। उन्होंने डॉक्टर को बतलाया कि ये सोने लगे थे तथा हमारे अनेक प्रयत्न करने पर भी जब इनकी आँखें झपकने लगीं तो एक समझदार युवक ने इन्हें बचाने के लिए कठोर शब्द कह दिए जिससे इन्हें क्रोध आ गया और ये सारी रात क्रोध के कारण सो न सके।

डॉक्टर ने सरपंच को बतलाया कि आप तो सर्प-विष के नशे में सोने लगे थे। यदि आप सो जाते तो हम आपको बचा न पाते। उस युवक ने जो आपके साथ कठोर व्यवहार किया था वह असभ्यतावश नहीं किया था, अपितु आपको बचाने के लिए किया था। आज आपका जीवन उस युवक के इस कठोर व्यवहार का ही परिणाम है। यदि वह आपको कठोर शब्द न कहता तो आप मर जाते। आपको उसका **कृतज्ञ** होना चाहिए।

सरपंचजी की समझ में आ चुका था। उन्होंने उस युवक को बुलाया। वह पैरों पर पड़ने लगा तो उठाकर छाती से लगाया और पुरस्कृत किया।

महर्षि दयानन्द की कठोर आलोचना से जाति (मानव जाति) सो न सकी और मरने से बच गई। किन्तु न जाने यह उसे पुरस्कृत कब करेगी! समय आएगा जब यह अपने जगाने और मरने से बचानेवाले का हृदय से स्वागत करेगी तथा उसके सिद्धान्तों को अपना कर उसे पुरस्कृत करेगी। **कृतघ्नता तो पाप है** ! जाति क्यों लेगी अपने सिर इस पाप को? वह संसार के इस अद्‌भुत क्रान्तिकारी ग्रन्थ **सत्यार्थप्रकाश** के

महान ग्रन्थकार **महर्षि दयानन्द** की कृतज्ञ होगी और अपने प्रारम्भिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक उनकी कालजयी अमर कृति सत्यार्थप्रकाश तथा अन्य ग्रन्थों को पढ़कर, पढ़ाकर उनमें अन्तर्निहित मन्तव्यों को अपना कर उनसे लाभान्वित होगी एवं अपनी कृतज्ञता प्रकट करेगी तथा उनके जयघोष से दिगन्तरों को गुँजाएगी।

—०—

महर्षि विचार

प्रश्न- ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ?

उत्तर- नहीं। क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाए और सब मनुष्य महा पापी हो जाएँ, क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाए। जैसे राजा अपराध को क्षमा कर दे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक-अधिक बड़े-बड़े पाप करें, क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा हो जाए कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेगें और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जाएँगे। इसलिए सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास से)